

मौर्योत्तर कालीन अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन का महत्व



Rajeev Kumar

UGC-NET, History, Vill-Umarpur Niwa Dhoomanganj,

Uttar Pradesh, India

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में मौर्यों द्वारा जो नियंत्रण स्थापित किया गया वह एक शताब्दी से ज्यादा नहीं चला। मौर्योत्तर काल में कृषि पर राज्य का नियंत्रण नहीं रहा। इस काल में हमें ऐसी राजकीय फर्मों के बारे में पता नहीं चलता जिन पर कृषि अधीक्षक की देखरेख में दास एवं भाड़े के मजदूर खेती करते हो। किंतु लगता है कि भूमि पर किसान का निजी स्वामित्व था। जहाँ तक कृषि विस्तार का प्रश्न है, राजकीय प्रयासों का स्थान निजी प्रयासों ने ले लिया था। मिलिन्दपण्हों में ऐसे व्यक्ति का उल्लेख है जो भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए जंगल साफ करता है और कुछ अन्य कदम उठाता है चूँकि वह भूमि को इस्तेमाल में लाता है इसलिए वह उसका मालिक कहा जाता है। मनु भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। उनके अनुसार ऋषिगण भूमि उनकी मानते हैं जिसने जंगल को साफ किया हो और आखेटित हिरण उसका मानते हैं, जिसने उसे पहले घायल किया हो। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से वे दावेदार भूसम्पत्ति में शारीरिक श्रम लगाने से संभवतः उस सम्पत्ति पर उसका हक हो जाता था।

संभवतः कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए इस सिद्धान्त को अपनाया गया हो। मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि कोई ब्राह्मण खेती वाली भूमि के बजाय ऐसी भूमि दान में स्वीकार करता है जिस पर खेती न की जा रही हो तो वह अपेक्षाकृत कम निंदा का अधिकारी है। यद्यपि मौर्योत्तर काल में खेती वाली भूमि दान में देने की प्रथा प्रचलन में आ गई थी। ब्राह्मणों को गैर कृषि योग्य भूमि दान में देने के पीछे उद्देश्य यह था कि उसे कृषि योग्य बनाया जा सके।

जब लाहे के कुदाल, दरांती और कुल्हाड़ी का प्रयोग होने लगा तो अन्न की उपज में बहुत अधिक वृद्धि हुई। वास्तव में बुद्ध के काल से ही पूर्णतया कृषि पर आधारित समाज की स्थापना हुई। मौर्योत्तर कालीन रचना चरक संहिता में अच्छे चावल की 15 किस्मों का उल्लेख मिलता है। उसमें चावल की 5 घटिया किस्मों का भी उल्लेख मिलता है। तृण धान्यों में कोण्डूषक का भी उल्लेख मिलता है। सुश्रुत संहिता में गेहूँ की दो किस्मों मधूलिका तथा नन्दामुखी का उल्लेख है। फलों में बेर के अतिरिक्त नारंगी तथा कमरख पारावत किस्म के सेब का उल्लेख चरक संहिता में है।

दालों में चना, मसूर मटर और अरहर के उत्पादन का उल्लेख मिलता है। तिलहन में तिल के अतिरिक्त सरसों, अलसी, अरण्डी और कुसुम्मा का भी तेल निकाला जाता था। इस काल में दक्षिण भारत में मसालों का बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जाता था।

ऊपर वर्णित अनाजों, दालों एवं फलों के अतिरिक्त कई किस्म के पत्ते के साग, ईख, एवं कपास की बड़े पैमाने पर खेती की जाती थी।

मौर्योत्तर कालीन सिंचाई व्यवस्था के सम्बन्ध में हमें मौर्यकाल जितने साक्ष्य नहीं मिले किन्तु समकालीन स्रोतों में छिटपुट विवरणों से स्पष्ट होता है कि इस काल में भी शासकों ने सिंचाई के प्रति ध्यान दिया था।

खारवेल तथा रुद्रदामन के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शासकों ने प्रजा की भलाई के लिए सिंचाई का उचित प्रबन्ध किया था। मनुस्मृति के अनुसार दो गाँवों के बीच का सीमांकन तालाबों, पोखरों, नहरों एवं जलाशयों से किया जाताना चाहिए। स्पष्टतया ये जलाशय केवल प्राकृतिक सीमाओं का ही काम नहीं करते थे, बल्कि अगल-बगल के इलाकों में भी सिंचाई के लिए जल जुटाते थे। मनु का यह भी कहना है कि दो गावों के बीच की सीमा हमेशा बहने वाले पानी की धारा से निश्चित होनी चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गर्मी के दिनों में नदियों का जल सूख जाने से कृत्रिम नहरों से जल की आपूर्ति होती होगी।

तत्कालीन धर्मशास्त्रों में जलाशयों के क्षति पहुँचाने वालों के लिए कड़े दंड का विधान है। मनु कहता है कि तालाब का तटबंध नष्ट करने वाले को तालाब में डुबो देना चाहिए। यह भी विधान है कि जो प्रजा की भलाई के लिए बने तालाब का अनाधिकार उपयोग करता है अथवा तटबंध बनाकर नहर के पानी को नष्ट करता है। उसे मृत्युदण्ड या सबसे भारी आर्थिक दण्ड मिलेगा।

पुरातात्विक साक्ष्यों से भी स्पष्ट होता है कि मौर्योत्तर काल में शासकों ने सिंचाई की व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किये थे। कनिष्क के आरा अभिलेख में लिखा है कि दसफोट नामक व्यक्ति ने जनसाधारण की भलाई के लिए एक कुआँ खुदवाया और राजा ने उसके लिए एक लाख सिक्कों का दान दिया था। गाथा सप्तशती से ज्ञात होता है कि संभवतः सबसे पहले रहट का प्रयोग सिंचाई के लिए मौर्योत्तर काल में किया गया।

मौर्योत्तर काल में राज्य ने कृषि को संरक्षण देने के लिए शायद कुछ कानून लागू किये। बार-बार विदेशी हमलों की वजह से कृषि कार्य में स्पष्ट रूप से बाधा आती थी। मनु ने राजा को निर्देश दिया था कि वह कृषि उपकरणों की चोरी के लिए लोगों को दण्डित करें, साथ ही मनु ने दूषित बीज बेचने वाले बोये हुए बीजों को निकाल लेने वाले और सीमा चिन्हों को नष्ट करने के अपराध में अंगभंग की व्यवस्था दी है। यह शायद सबसे स्पष्ट आर्थिक लाभों में से था। जिसके एवज में राज्य किसान से कर की मांग करता था। मिलिन्दपण्हों में गाँव के मुखिया का उल्लेख किया गया है जो अपने दूत के द्वारा सभी गृहस्वामियों को अपने द्वार पर बुलाता था ताकि राजा की ओर से उनसे कर वसूला जा सके।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनुस्मृति रामायण, महाभारत आदि से स्पष्ट है कि इस काल में भारतीयों के लिए पशुपालन का उतना ही महत्व था जितना कि कृषि का। मनु के अनुसार जो वैश्य खेती के साथ पशु पालन नहीं करता वह अपने धर्म का पालन नहीं करता। पशुओं का आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण योगदान था। बैलों एवं भैंसों का खेत जोतने में उपयोग किया जाता था। आन्तरिक व्यापार में घोड़ों एवं खच्चरों का महत्वपूर्ण योगदान था। यूनानी लेखकों के अनुसार हाथियों का प्रयोग शिकार करने एवं सवारी करने के लिए किया जाता था।

कृषि योग्य भूमि के स्वामित्व के विषय में विद्वानों के तीन मत हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि प्रत्येक भूमिखण्ड का स्वामी वह किसान है जो उस पर खेती करता था। कुछ अन्य विद्वान कहते हैं कि भारत में सदा से ही भूमि का स्वामी वह शासक होता था। जिस पर वह राज्य करता था।

मिलिन्दपण्हो से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ में जो व्यक्ति जंगल को साफ कर खेती करता था वही उस भूमि का स्वामी माना जाता था। मनु ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं उनके अनुसार खेत का स्वामी वह व्यक्ति होता है जो जंगल को साफ करने वाले को कृषि योग्य भूमि का स्वामित्व प्रदान करके कृषि को प्रोत्साहन देना चाहते थे क्योंकि मनु ने कहा है कि ब्राह्मण को बिना जुटे जंगल की भूमि को दान में लेने में उतना पाप नहीं है। जितनी की जुटी भूमि दान में लेने में। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा एक, दस बीस अथवा एक हजार गाँवों का राजस्व या राजकर्मचारियों को कुछ भूमिखण्ड दान में दे सकता था। इसका यह अर्थ है कि मनु के काल में धर्मोत्तर कार्यों के लिए भी भूमिखण्ड देना वैध समझा जाता था।

नासिक गुफा के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उपासक ने कुछ भिक्षुओं को वस्तु दान में देने के लिए एक खेत दान में दिया था। कार्ले की गुफा के अभिलेखों में उल्लेख है कि उषावदत्त ने 16 गांव ब्राह्मणों, देवताओं एवं सन्यासियों को दान में दिये थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ब्राह्मण या संन्यासी उन गांवों के स्वामी हो गये बल्कि इसका अर्थ यह है कि भूमिकर का उपयोग करने का अधिकार उनको मिल गया। स्मृतिकारों ने किसी चरवाहे की असावधानी से किसी खेत की हानि होने पर खेत के स्वामी को क्षतिपूर्ति दिलाने के जो नियम दिये हैं उनसे भी खेतों पर व्यक्तियों का स्वामित्व स्पष्ट होता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट कहा गया है कि भूमि पर स्वामित्व होने के लिए अधिकार एवं अधिकार पत्र दोनों का होना आवश्यक है। भूमि पर स्वामित्व की संकल्पना को नारद ने इस प्रकार समझाया है कि यदि खेत का स्वामी कहीं चला जाये और कोई अन्य व्यक्ति उस खेत को जोत ले और उसी समय खेत का स्वामी वापस आ जाये तो फसल तैयार होने तक जितना धन दूसरे व्यक्ति ने खर्च का हो उतना धन देकर खेत का स्वामी खेत वापस ले सकता है।

गौतम और मनु के अनुसार भूमि का स्वामी अपनी भूमि का प्रयोग अपनी इच्छानुसार कर सकता था। वह उसे बँच सकता था, दान में दे सकता था और गिरवी रख सकता था। सातवाहन शासकों की प्रजा के पास अपनी-अपनी भूमि थी। क्योंकि वे विभिन्न आकार के भूखण्ड ब्राह्मणों, साधुओं को दाने में देते थे। किन्तु यह कहना मुश्किल है कि वे अन्य लौकिक गतिविधियों के लिए भूमि को खरीद बेच सकते थे।

मुद्रा प्रसार प्रचार के बावजूद हमें ऐसी सूचना नहीं मिलती जहाँ व्यापारियों ने अपनी सम्पत्ति बढ़ाने के लिए जमीन खरीदी हो। पश्चिमी दक्कन में उनके द्वारा भूमि के धार्मिक अनुदान से यह संकेत मिलता है कि बुद्धकालीन उन बड़े-बड़े सेट्टियों के प्रतिरूप थे जो भोगगामों का उपयोग करते थे। यह कहना मुश्किल है कि क्या वे यूनानी व्यापारियों की तरह भूमि खरीद कर व्यापार से संन्यास लेते थे और श्रेष्ठी बन जाते थे। चूँकि लौकिक उद्देश्यों के लिए भूमि की खरीद फरोख्त के कोई दस्तावेज हमारे पास नहीं है। अतः इससे निश्चय ही निजी स्वामित्व का क्षेत्र सीमित हुआ होगा। व्यापार तथा अन्य कामों में लगे लोग अपनी भूमि को बेरोकटोक बँच सकते थे।

किन्तु यह सोचना गलत होगा कि राज्य का स्वामित्व एकदम नहीं था। मिलिन्दपण्हों में कहा गया है पृथ्वी पर स्थित सभी शहरों समुद्रतटों, खानों आदि पर राजा के स्वामित्व को मान्यता दी गई है। इससे सामान्य क्षेत्रीय संप्रभुता का संकेत मिलता है। इस आधार पर राजा गांवों तथा जनपदों का प्रधान नियुक्त कर सकता था।

भारत में भूमि अनुदान का सबसे प्राचीन अभिलेखीय साक्ष्य प्रथम शताब्दी ई०पू० का है। जब शातवाहन शासकों ने महाराष्ट्र पर यज्ञ के अवसर पर उपहार स्वरूप पुरोहितों को एक गांव दिया था। ऐसे अनुदानों पर कोई कर नहीं लगता था। यहाँ तक गौतमी पुत्र शातकर्णि ने इन क्षेत्रों से प्रशासनिक अधिकार भी छोड़ दिये थे। इस तरह आवंटित भू-क्षेत्र में न तो राजकीय सेना प्रवेश कर सकती थी न सरकारी कर्मचारी उसमें दखल दे सकते थे।

शकों और कुषाणों के काल में भूराजस्व व्यवस्था कैसी थी इसके बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। विशेषकर कुषाणों की भूमि व्यवस्था के बारे में जानकारी काफी कम है। शक शासक रुद्रदामन ने अपने जूनागढ़ अभिलेख में यह दावा किया है कि उसने सौराष्ट्र में सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण कराया किन्तु इसके लिए उसने बेगार (विष्टि) प्रणय या फल-फूल के ऊपर लगाये जाने वाले कर के रूप में अपनी प्रजा पर कोई बोझ नहीं डाला, कुषाणों का साम्राज्य आक्सस से लेकर बनारस तक था। लगभग दूसरी शती के अभिलेख से यह पता चलता है कि यज्ञ में पुरोहिताई करने वाले ब्राह्मणों को एक गांव दान में दिया गया था जो संभवतः इलाहाबाद के आस-पास था। कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारी बोद्ध धर्म के समर्थक थे किन्तु यदि

उन्होंने बौद्ध साधुओं को भूमि दान में दी हो तो उसे कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। संभवतः कुषाणों ने भूधारण अधिकार की अक्षयनीवी प्रणाली शुरू की। जिसका आशय है भूराज्य का स्थायी दान।

प्राचीन काल से समाज में अराजकता थी। अतः प्रजा ने एक वीर पुरुष को अपना राजा चुना। उसने प्रजा की रक्षा करने का वचन दिया और प्रजा ने उसके प्रति निष्ठा रखने और उसे कर देने का वचन दिया। इस प्रकार राजा का कर लेने का अधिकार राज्य के उदय के समय जो संविदा राजा और प्रजा में हुआ था उसी पर आधारित था। राजा को कर वसूल करता था वह प्रजा की रक्षा की पारिश्रमिकी था। गौतम ने लिखा है कि प्रजा राजा को इसलिए कर देती है क्योंकि वह प्रजा की रक्षा करता है। अधिकतर कर जन साधारण से लिया जाता था। जनसाधारण में किसान पशुपालक, शिल्पी एवं व्यापारी शामिल थे।

अर्थशास्त्र से हमें उस पद्धति का पता चलता है जिसके द्वारा भूराज्य स्व निश्चित किया जाता था। मौर्यकाल में पूरे गाँव का इकट्ठा कर भी निर्धारित किया जाता था। जिसे पिण्डकर कहते थे। मौर्योत्तर काल में हमें पिण्ड कर का उल्लेख नहीं मिलता। इससे यह स्पष्ट होता है कि मौर्योत्तर काल में पूरे गाँव पर कर लगाने की प्रथा सम्भवतः समाप्त हो गई थी।

मनुस्मृति और महाभारत में राजा को अन्न का 1/10 भाग कर के रूप में लेने की अनुमति दी गई है। मनुस्मृति और महाभारत में राजा को उतना ही कर लेने का विधान दिया गया है। जिससे कि उत्पादकों के पास उत्पादन के लिए पर्याप्त धन बचा रहे। क्योंकि इन ग्रंथों के रचयिता यह जानते थे कि राज्य की आय उत्पादन पर ही निर्भर है। मनु ने भूमि की उपज के अनुसार अन्न का 1/6, 1/8 तथा 1/12 भाग राजा का भूराज्य स्व निश्चित किया है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि राजस्व का यह भाग कुल उपज का था या किसान की लागत काटकर शेष उत्पादन का। महाभारत के शान्तिपर्व में स्पष्ट लिखा है कि कर का निर्धारण आय और खर्च का हिसाब लगाकर करना चाहिए।

कुरुधम्म जातक से ज्ञात होता है कि खड़ी फसल का अनुमान लगाकर भूराज्य स्व निश्चित किया जाता था। भूराज्य स्व निर्धारित करने की इस पद्धति को कनकूत कहते हैं। महाभारत में इस बात का भी वर्णन है कि दुर्भिक्ष के समय राजा को कर नहीं वसूल करना चाहिए।

भूराज्य स्व को भाग कहा जाता था क्योंकि इसमें उत्पादित अनाज का एक भाग राजा कर के रूप में लेता था। यू०एन० घोषाल के इस विचार से सहमत हुआ जा सकता है कि भाग का अर्थ उपज में राजा का हिस्सा था। यह साधारणतयः उपज का छठवां भाग होता था, किन्तु यह भाग सदा उपज का छठवां भाग नहीं रहा। भाग राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। इसके अतिरिक्त राजा प्रजा से कुछ कर वसूल करता था इन्हें साधारणतया बलि कहा जाता था। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में बलि का उल्लेख है। इस अभिलेख में कर, विष्टि और प्रणय को कष्टकर कर कहा गया है।

कर सम्भवतः सम्पत्ति का वार्षिक कर था। मनु के अनुसार 'कर' भाग के अतिरिक्त टैक्स था। बाद में कर शब्द का प्रयोग भाग के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के कर के लिए किया जाने लगा। प्रणय का अर्थ आयात कालीन कर है। जब राज्य को अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती थी तो वह साधारण करों के अतिरिक्त प्रजा को कुछ अधिक धन देने के लिए बाध्य करता था। मनु के अनुसार राजा को प्रणय के अंतर्गत चौथाई से अधिक अनाज नहीं लेना चाहिए।

सरकारी फर्मों का निरीक्षण विशेष निरीक्षक के हाथ में था। इन फर्मों पर जो किसान खेती करते थे उनके अपने बैल और हल आदि होते थे तो उन्हें उपज का आधा भाग लेने का अधिकार था। यह वह सरकारी बैलों एवं हलों का प्रयोग करते थे तो उपज का 1/4 भाग प्राप्त करते थे। इन फर्मों में बेगार करने वाले मजदूर भी काम करते थे। कृषि से आय के अतिरिक्त राज्य को सुरक्षित जंगलों, खानों सरकारी चारागाहों और अनाज की बिक्री से भी आय होती थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.	झा, डी0एन0	1967	रेवेन्यू सिस्टम इन पोस्ट मौर्य एण्ड गुप्त टाइम्स
2.	ओम प्रकाश	1987	प्राचीन भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन दिल्ली
3.	झा0 डी0एन एण्ड श्री माली के0एम0	1993	प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4.	चट्टोपाध्याय सुधाकर	1958	अर्ली हिस्ट्री आफ नार्थ इण्डिया
5.	मजूमदार आर0 सी0	1918	कार्पोरेट लाइफ इन इन्शिएण्ट इण्डिया
6.	राय जयमल	1974	द रूरल अरबन इकोनमी एण्ड सोशल चेन्जेस इन एन्शिएण्ट इण्डिया
7.	वरमिंगटन ई0 एच	1928	कामर्श बिटवीन द रोमन एम्पायर एण्ड इण्डिया
8.	अदिय जी0 एल0	1966	अर्ल इण्डियन इकोनामिक्स
9.	मुखर्जी बी0 एन0	1970	द इकोनामिक्स फैक्टर इन कुषाण हिस्ट्री
10.	शर्मा आर0एस0	1992	प्राचीन भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
11.	बन्दोपाध्याय	1945	इकोनोमिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन इन्शिएण्ट इण्डिया कोलकाता
12.	बोस0 ए0 एन0	1970	शोसल एण्ड रूरल इकोनामी ऑफ नार्दन इण्डिया, कोलकाता
13.	गोपाल एल	1965	द इकोनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, दिल्ली।
14.	चक्रवर्ती, हरिपदा	1966	ट्रेड एण्ड कामर्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया